© 2017 IJSRSET | Volume 3| Issue 2 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099
Themed Section : Engineering and Technology

भारतीय संस्कृति में उपनयन संस्कार

दीपचन्द यादव
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

भारतीय संस्कृति के उत्थान में संस्कारों का बड़ा महत्त्व है इससे किसी भी देश–विदेश की सामाजिक स्थिति के बारे में सामान्य स्थिति का अवलोकन किया जा सकता है। यद्यपि यह संस्कार शब्द बहुत प्राचीनयुग का नहीं है क्योंकि इसका उल्लेख प्राचीनतम ग्रन्थों यथा ऋग्वेदादि में कहीं भी नहीं मिला है किन्तु उस समय भी आधुनिक युग के कुछ संस्कार हुआ करते थे परन्तु उनका संस्कार जैसा कोई नामकरण पूर्व में नहीं था। कुछ सूक्तों में विवाह, गर्भाधान और अन्त्येष्टि जैसे कुछ धार्मिक कृत्यों का वर्णन मिलता है। यजुर्वेद में केवल श्रौत यज्ञों का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में विवाह, अन्त्येष्टि और गर्भाधान संस्कारों का वर्णन ऋग्वेद से अधिक मिलता है। गोपथ और शतपथ ब्राह्मणों में उपनयन संस्कारों के धार्मिक कृत्यों का उल्लेख हमें मिलता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में दीक्षान्त शिक्षा का संस्कार मिलता है।

इस प्रकार गृह्यसूत्रों से पूर्व हमें संस्कारों के पूरे नियम नहीं मिलते। ऐसा प्रतीत होता है कि गृह्यसूत्रों से पूर्व पारम्परिक प्रथाओं के आधार पर ही संस्कार होते थे सबसे पहले गृह्यसूत्रों में ही संस्कारों की पूरी पद्धति का वर्णन मिलता है। इसमें सबसे पहले विवाह नामक संस्कार का उल्लेख मिलता है। स्मृतियों में संस्कारों का उल्लेख एवं तत्सम्बन्धी नियम अच्छी तरह से बताये गये हैं। इनमें उपनयन संस्कार का वर्णन बड़े ही विस्तार के साथ दिया गया है क्योंकि उपनयन संस्कार के द्वारा व्यक्ति ब्रह्मचर्य आश्रम में और विवाह संस्कार के द्वारा गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है।

संस्कार का अभिप्राय उन धार्मिक कृत्यों से होता है जो किसी व्यक्ति को अपने समुदाय का पूर्ण रूप से योग्य साक्ष्य बनाने के उद्देश्य से उसके शरीर, मस्तिष्क को पवित्र करने के लिये किये जाते हैं। मनु और याज्ञवल्क्य के अनुसार संस्कारों से द्विजों के गर्भ और बीज के दोषादि की शुद्धि होती है। प्राचीन भारत में संस्कारों के द्वारा मनुष्य अपनी सहज प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास करके अपना और समाज का कल्याण करता था। ऐसी मान्यता थी कि ये संस्कार इस जीवन में ही मनुष्य को पवित्र नहीं करते बल्कि उसके पारलौकिक जीवन को भी पवित्र बनाते थे।

गौतम धर्मसूत्र में संस्कारों की संख्या चालीस बतायी गयी है परन्तु वर्तमान में सर्वमान्य संस्कार 16 माने गये हैं–गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, कर्णभेदन, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदाध्ययन, केशान्त, समावर्तन, विवाह और अन्त्येष्टि। प्रथम तीन संस्कार जन्म से पूर्व किये जाते हैं। अन्तिम संस्कार मरणोपरान्त होता है, शेष संस्कार जन्म होने के बाद और मृत्यु से पूर्व किये जाते हैं।

संस्कृति की भूमि संस्कार पर आधारित है। संस्कार ही संस्कृति के जन्म और उत्कर्ष के कारण एवं साधन हैं। इस दृष्टि से संस्कृति की आधारभूमि और व्यक्ति तथा समाज के उन्नायक संस्कारों की सम्यक् जानकारी प्राप्त करनी परामावश्यक है।

'संस्कार' का अर्थ है संस्कृत करना, ठीक करना, उपयुक्त बनाना या सम्यक् करना आदि। किसी साधारण या विकृत वस्तु को विशेष क्रियाओं द्वारा उत्तम बना देना ही उसका संस्कार है। इस साधारण मनुष्य–जीवन को विशेष प्रकार की धार्मिक प्रक्रियाओं द्वारा उत्तम बनाया जा सकता है, जिससे कि वह जीवन में परम उत्कर्ष को प्राप्त कर सके। ये विशिष्ट धार्मिक प्रक्रियाएँ ही 'संस्कार' है।

यह जीवमयी सृष्टि त्रिस्कन्धात्मक है : आध्यात्मिक, अधिभौतिक और आधिदैविक। आत्मा और शरीर के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाला सूत्रात्मा सत्त्व है। आत्मा, शरीर और सत्त्व के आधार हैं ब्रह्म, भूत और देवता। इसी कारण सृष्टि त्रिस्कन्धात्मक है। आत्मा ज्ञानप्रधान, शरीर क्रियाप्रधान और सत्त्व अर्थप्रधान है। समष्टि–संयुक्त होने के कारण भूत, देव और ब्रह्म तीनों संस्कार सापेक्ष्य हैं। भूत संस्कार से शरीरशुद्धि, देव संस्कार से देवशुद्धि और ब्रह्म संस्कार से आत्मशुद्धि होती है। भूत संस्कार अप्रधान होने के कारण, उसका शेष दोनों संस्कारों में अन्तर्भाव हो जाता है। इसलिए श्रुतियों और स्मृतियों में संस्कार दो ही प्रकार के माने जाते हैं–1. ब्रह्म संस्कार और 2. देव संस्कार। ब्रह्म संस्कारों को 'स्मार्त' और देव संस्कारों को 'श्रौत' नाम से कहा जाता है। इन दोनों प्रकार के संस्कारों से संस्कृत–द्विजाति त्रिविध (आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक) मलिनताओं से विमुक्त होकर शुद्ध सत्त्वभाव (पूर्ण पुरुषत्व) को प्राप्त होता है।

इस प्रकार संस्कारों का सम्बन्ध मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति से है। उनसे आत्मा और शरीर दोनों की शुद्धि होती है और अन्तःकरण में सद्विचारों एवं शुद्ध संकल्पों का उदय होता है। वे अतीत, अनागत और वर्तमान तीनों जीवनों के उपकारक हैं।

उपनयन संस्कार को यज्ञोपवीत या 'व्रतबन्ध' संस्कार भी कहते हैं। यह संस्कार ब्रह्मचर्यावस्था की प्रथम सीढ़ी है, जिसके द्वारा बालक की बुद्धि का परिमार्जन होता है, जिससे वह विद्याध्ययन के उपयुक्त बन सके। उपनयन का अर्थ होता है, 'समीप ले जाना।' उपनयन संस्कार के उद्गम एवं विकास के विषय में कुछ चर्चा होना आवश्यक है, क्योंकि संस्कार का मूल भारतीय एवं इरानी है, क्योंकि प्राचीन जोरास्ट्रिएन

शास्त्रों के अनुसार पवित्र मेखला एवम् अधोवसन (लुंगी) का सम्बन्ध पारसियों से भी है। ऋग्वेद में ब्रह्मचारी शब्द आया है।[1]

इस संस्कार में ब्रह्मचारी दो वस्त्र धारण करता था, जिसमें एक अधोभाग के लिए तथा दूसरा उत्तरीय भाग के लिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य ब्रह्मचारी के लिए वस्त्रक्रम में पटुआ के सूत का, सन के सूत का एवं मृगचर्म का होता था।[2] दण्ड के विषय में दण्ड किस वृक्ष का बनाया जाय, इस विषय में बहुत मतभेद है। आश्वलायन गृह्यसूत्र के मत से ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए क्रम से पलाश, उदुम्बर एवं बिल्व का दण्ड होना चाहिए।[3] आपस्तम्ब गृह्यसूत्र के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए क्रम से पलाश, न्यग्रोथ की शाखा एवं बदर या उदुम्बर का दण्ड होना चाहिए।[4] मेखला के सम्बन्ध में कहा गया है कि गौतम, आश्वलायनगृह्य सूत्र, बौधायनगृह्य सूत्र[5], मनु (2/42), काठकगृह्य सूत्र (41/42), भारद्वाज (1/2) आदि के मत से ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य बच्चे के लिए क्रम से मुंज, मुर्वा, पटुआ होनी चाहिए।

इस संस्कार में बालक को गुरु के समीप ले जाया जाता है। गुरु आश्रम में रहकर वह वेदाध्ययन का अधिकारी होता है। उसमें बुद्धि के अधिष्ठाता सूर्यदेव की आराधना और यज्ञ का विधान होता है। यज्ञ में पलाश की समिधाओं की आहूति दी जाती है और पलाश दण्ड धारण किया जाता है। आयुर्वेदशास्त्र में पलाश को बुद्धि–वर्द्धक कहा गया है।

उपनयन संस्कार बालक के दूसरे जन्म का सूचक माना गया है, क्योंकि इस जन्म में सावित्री उसकी माता और आचार्य पिता का स्थान ग्रहण करते हैं। इसी संस्कार के बाद उपनीत बालक द्विजाति की श्रेणी में परिगणित होता है। ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत आठवें वर्ष में होता है।[6] वर्षों की गणना गर्भाधान से होनी चाहिए।[7] बालक की विलक्षण बौद्धिक प्रतिभा के कारण पाँचवें वर्ष भी उसका उपनयन हो सकता है। उसकी अन्तिम अवधि सोलहवाँ वर्ष है। इसी प्रकार क्षत्रिय का ग्यारहवें और वैश्य का बारहवें वर्ष निर्धारित है। उनकी अंतिम सीमा क्रमशः बाईसवां और चौबीसवां वर्ष निर्धारित है। इन अवस्थाओं का अतिक्रमण करने के बाद बालक द्विजाति से च्युत हो जाता है और तब वह किसी भी पुण्य कर्म के सम्पादन तथा विवाहादि का अधिकारी नहीं माना जाता है।

संस्कार सम्पन्न होने के पूर्व उपनयन के लिए एक मण्डप का निर्माण किया जाता है।[8] संस्कार के एक दिन पूर्व अनेक पौराणिक विधि–विधान किये जाते थे। सर्वाधिक शुभ देवता गणेश का आराधना तथा श्री लक्ष्मी, धात्री, मेध्णा, पुष्टि, श्रद्धा और सरस्वती आदि अन्य देवियों का पूजन किया जाता था। उपायन के पूर्व रात्रि को बालक के शरीर पर हल्दी के द्रव का लेप किया जाता और उसकी शिखा से एक चाँदी की अँगूठी बांध दी जाती थी। इसके पश्चात् उसे सम्पूर्ण रात्रि पूर्ण मौन रहकर व्यतीत करनी होती थी। यह एक रहस्यपूर्ण विधि थी जो बालक को द्वितीय जन्म के लिए प्रस्तुत करती थी।

इस संस्कार के बाद बालक में तेज, बल और वीर्य का आधान होता है। ये तीनों तत्त्व ईश्वर से उत्पन्न माने गये है।। इस त्रिवृत्त को एक–एक करके ईश्वर स्वयं उसमें अधिष्ठित होता है। इसलिए यज्ञोपवीत में प्रथम तीन सूत्रों को त्रिवृत्त करने और तदनन्तर उसके तीन सूत्र बना दिये जाते हैं। त्रिवृत्त परमेश्वर के ध्यानसूचक यज्ञोपवीत में तीन या पाँच ग्रन्थियाँ लगायी जाती हैं। उसे 'ब्रह्मग्रन्थि' कहा जाता है। ध्यान, उपासना और मंत्र जाप, तर्पण आदि कर्मों के सम्पादन के समय इस 'ब्रह्मग्रन्थि' को आधार माना जाता है।

इस प्रकार हिन्दू संस्कृति बहुत ही विलक्षण है इनके सभी सिद्धान्त–संस्कार पूर्णतया वैज्ञानिक हैं इन सभी का उद्देश्य मानव का कल्याण करना होता है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त मनुष्य संस्कारों में ही बधा रहता है। संस्कार सम्पन्न सन्तान ही गृहस्थाश्रम की सफलता और समृद्धि का रहस्य होता है। यह संस्कार की कला विद्याध्ययन–वेदाध्ययन से आती है जिसके लिये यह उपनयन संस्कार प्रयुक्त होता है इसमें गुरु के पास शिक्षा लेने के लिये विद्यार्थी जाता है और समावर्तन संस्कार के द्वारा जब वापस गृहस्थाश्रम में लौटता है तो वह सभी संस्कारों से सुसज्जित एवं सर्वगुणसम्पन्न रहता है। इसलिये उपनयन संस्कार का प्राचीन भारतीय संस्कृति से ही बड़ा महत्त्व रहा है और यह चिरकाल तक बना रहेगा।

सन्दर्भ–सूची

1. ब्रह्मचारी चरित वेविषद् विषः स देवानां भवत्येकमंगम्।
   तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्य न देवाः।।
   –ऋग्वेद 10/109/5
2. आपस्तम्बधर्म सूत्र–1/1/2/39–1/1/3/1–2
3. आश्वलायनसूत्र, गृह्यसूत्र– 1/19/13 एवं 1/20/1
4. आपस्तम्बधर्म सूत्र–11/15–16
5. आश्वलायनसूत्र, गृह्यसूत्र–1/19/11, बौधायन गृह्यसूत्र–2/5/13
6. आपस्तम्ब–10/2, शंखायन–2/1, बौधायन–2/5/2, ग एवं या
7. आपस्तम्ब–10/2, शंखायन–2/1, बौधायन–2/5/2, ग एवं या 1/14, आपस्तम्ब धर्मसूत्र–1/1/1/19
8. पञ्चस, बहिःशालायां विवाहे चूड़ाकरण उपनयने। (पा.गृ.स.–1/4/2)